क्या कौशल-समावेशी शिक्षा सभी के लिए स्कूली शिक्षा सम्भव करेगी?

वी. शान्ताकुमार

सरोकार रखने वाले कई लोगों का मानना है कि स्कूली शिक्षा में कौशलों का अपर्याप्त समावेशन नुकसानदायक है क्योंकि इससे कई बच्चे (या उनके माता-पिता) स्कूली शिक्षा में रुचि खो देते हैं, बच्चे अपने माता-पिता या समुदाय के पारम्परिक कौशलों से दूर हो जाते हैं। भारत में स्कूली शिक्षा पूरी कर चुके वयस्कों की व्यापक बेरोज़गारी का एक कारण यह भी है। यह एक जटिल मुद्दा है और इसे समझने के लिए हमें भारत के अनुभव सहित ऐतिहासिक और अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव देखने होंगे।

औपनिवेशिक शिक्षा

कई टिप्पणीकारों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को इस बात के लिए दोषी ठहराया है कि उसने भारत में एक *सामान्य-उद्देश्य* वाली स्कूली शिक्षा शुरू की जो विभिन्न प्रकार के कौशलों का विकास नहीं करती थी। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा ऐसा निर्णय लेने के पीछे एक कारण था। भारत के लिए शिक्षा डिज़ाइन करते समय यूके में बहस छिड़ी हुई थी, जहाँ पर उस समय तक दो प्रकार की स्कूली शिक्षा चल रही थी : एक, सामान्य-उद्देश्य वाली स्कूली शिक्षा, जिसका पक्षपोषण मुख्य रूप से सम्पन्न लोग करते थे और दूसरी, जिसे 'प्रशिक्षुता या अप्रेंटिसशिप' कहा जाता था, ग़रीब परिवारों के बच्चों के लिए थी। ऐसी दोहरी शिक्षा प्रणाली के सामाजिक प्रभावों को लेकर चिन्ताएँ थीं। जो लोग असमानता के बारे में सोचते थे, उन्होंने तर्क दिया कि निर्दिष्ट वर्षों तक सभी बच्चों को सामान्य-उद्देश्य वाली स्कूली शिक्षा दी जाए। ब्रिटेन में रणनीति के इसी बदलाव ने भारत में औपनिवेशिक शिक्षा को प्रभावित किया।

गाँधी का दृष्टिकोण

गाँधी औपनिवेशिक शिक्षा के खिलाफ़ थे और इसका एक कारण था उस समय के अधिकांश भारतीयों की आजीविका से इसका जुड़ाव न होना। उन्होंने अपनी *नई तालीम* की अवधारणा में कृषि और कारीगरी के कौशलों को शिक्षा के अंग के रूप में शामिल किया। कुछ लोगों ने इस विचार का विरोध किया, उदाहरण के लिए, तमिलनाडु के द्रविड़ कज़कम (डीके) के नेता, जिन्हें लगा कि इसके कार्यान्वयन से जाति व्यवस्था जारी रहेगी।

हालाँकि, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर के कुछ उदारवादी लोग जैसे जवाहर लाल नेहरू, गाँधी के दृष्टिकोण को लेकर उत्साहित नहीं थे, किन्तु भारत में स्वतंत्रता के बाद की सरकारों ने देश के ऐसे कई स्कूलों का समर्थन किया जो *नई तालीम* के साथ प्रयोग करना चाहते थे। लेकिन कुछ दशकों बाद इनमें से कई स्कूलों ने मुख्यधारा की स्कूली शिक्षा प्रदान करना शुरू कर दिया था।

इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण था। कई किसान और कारीगर अपने बच्चों को उन स्कूलों में नहीं भेजना चाहते थे जो कृषि या कारीगरी के कौशल सिखाते हों। उनका कहना था कि बच्चे अपने माता-पिता के कार्यों में मदद करके इन कौशलों को और भी बेहतर तरीक़े से सीख सकते हैं और इसके लिए उन्हें स्कूल में जाने के लिए समय भी नहीं निकालना पड़ेगा। अतः यह स्पष्ट हो गया कि ग़रीब माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए केवल तभी तैयार थे यदि उन्हें लगे कि उस शिक्षा से उनके बच्चों को एक अलग और बेहतर जीवन मिल सकेगा।

अन्य देशों में व्यावसायिक कौशल

यूरोप

जर्मनी एक ऐसा देश है जहाँ माध्यमिक विद्यालय में बच्चों के कुछ वर्गों को व्यावसायिक धारा की ओर मोड़ दिया जाता है। ज़्यादातर जर्मन लोग, जो कार और अन्य इंजीनियरिंग उत्पाद बनाने वाले कारख़ानों में कार्य करते हैं, वे व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किए हुए होते हैं। जर्मनी के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण कारकों पर विचार किया जाना चाहिए : पहला, जो लोग व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करते हैं, उन्हें औद्योगीकरण की वजह से अच्छा वेतन और सामाजिक सुरक्षा के सभी लाभ मिलते हैं। दूसरा, स्कूल ही बच्चों को व्यावसायिक और सामान्य श्रेणियों में रखते हैं (बाद वाले समूह के विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं)। इस प्रकार माता-पिता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति इस विकल्प को प्रभावित नहीं करती है।

इटली की स्थिति कुछ अलग है, हालाँकि वहाँ भी विद्यार्थियों के पास माध्यमिक विद्यालय में व्यावसायिक धारा की पढ़ाई करने का विकल्प है। इटली में माता-पिता अपने बच्चों के लिए धारा का चयन करने में अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कामकाजी वर्ग के माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे जल्द-से-जल्द नौकरी करने लगें जिसके लिए व्यावसायिक धारा उपयुक्त है। इसलिए सम्भव है कि वे अपने बच्चों को व्यावसायिक धारा का चयन करने के लिए प्रोत्साहित करें, भले ही उनकी योग्यता और रुचि सामान्य धारा और बाद में विश्वविद्यालय की शिक्षा में हो। हो सकता है कि इसने इटली में असमानताओं और वर्ग-भेद के बने रहने में योगदान दिया हो।

यूके और यूएसए

दूसरी ओर, यूके में, और इसके प्रभाव के कारण यूएसए में, 12 साल तक सभी बच्चों को सामान्य-उद्देश्य वाली स्कूली शिक्षा प्रदान की जाती है। इसके फ़ायदे और नुकसान दोनों हैं। अपनी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बावजूद सभी बच्चों के सामने विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने का विकल्प बना रहता है। यह भी हो सकता है कि कई विद्यार्थी जो रुचि की कमी या अन्य कारणों से आगे चलकर ऐसी शिक्षा प्राप्त न करें, तो उनके कई साल बर्बाद हो सकते हैं, जिनका उपयोग अन्यथा वे किसी लाभदायक व्यवसाय या कौशल प्राप्त करने के लिए कर सकते थे। वैसे पॉलिटेक्निक या सामुदायिक कॉलेजों में कौशलों की शिक्षा, सामान्य-उद्देश्य स्कूली शिक्षा के 12 साल बाद उपलब्ध होती है।

कुछ प्रयोग

ऐसे अन्य रोचक प्रयोग हुए हैं जो यहाँ उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं सदी के अन्त में त्रावणकोर की रियासत ने किसानों के बच्चों के लिए एक स्कूल शुरू करने का फ़ैसला किया। इसका उद्देश्य, सुविज्ञ किसान बनाना था। लेकिन पाठ्यक्रम पूरा होने के बाद, कोई भी विद्यार्थी कृषि-क्षेत्र में वापस नहीं जाना चाहता था, इसकी बजाय उन्होंने सरकारी नौकरी की माँग की।

दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में, विशेषकर केरल, ब्राज़ील और इंडोनेशिया में मछुआरों के परिवारों के बच्चों के लिए स्कूल शुरू करने के प्रयास भी किए गए। कहीं-कहीं तो यह स्कूल मछुआरों के बच्चों को मुख्यधारा की शिक्षा प्रदान करने के काम भी आए क्योंकि उनके परिवार का वातावरण नियमित, मुख्यधारा के स्कूलों में दी जाने वाली स्कूली शिक्षा के लिए बहुत अनुकूल नहीं है। उनमें से कुछ मछली से जुड़े व्यापार को छोड़कर नियमित रूप से नौकरी भी कर सके। इस प्रकार अधिकांश मामलों में स्कूलों का उपयोग कर प्रशिक्षित मछुआरे बनाने का उद्देश्य पूरा नहीं हो सका। यदि समुद्री मत्स्य-पालन छोटे पैमाने पर ही जारी रहता है (और दुनिया के कई हिस्सों में अधिकांश मत्स्य पालन इसी तरह से किया जा रहा है), तो स्कूल जाने वाले उम्र के लड़कों को मछली पकड़ने की गतिविधियों में जल्दी ही भाग लेना पड़ता है, जिससे वे स्कूली शिक्षा को अधिक समय नहीं दे पाते।

आइए, अब एक और स्थिति पर विचार करते हैं। चीन, वियतनाम, थाईलैंड और कुछ हद तक इंडोनेशिया भी, निर्माण उद्योगों में रोज़गार पैदा करने के मामले में भारत से बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। इन देशों में कारख़ानों में लाखों श्रमिक काम करते हैं। यह श्रमिक कौन हैं? क्या यह वे लोग हैं जिन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा के हिस्से के तौर पर कुछ कौशल प्राप्त किए हैं? इन सभी देशों में लड़के और लड़कियाँ नियमित स्कूली शिक्षा पूरी करते हैं, शहरों में जाते हैं और ऐसे कारख़ानों में नौकरी करते हैं जहाँ मोबाइल फोन, खिलौने, लैपटॉप आदि के पुर्जे जोड़ने का काम होता है या वस्त्र बनते हैं। जो काम उन्हें करने होते हैं उसके हिसाब से उन्हें अपने कार्य स्थलों पर ही कुछ महीनों का प्रशिक्षण दे दिया जाता है।

यदि हम अपने पड़ोसी देश, बांग्लादेश को देखें तो वहाँ पर लगभग 60 प्रतिशत वयस्क महिला आबादी को वैतनिक रोज़गार प्राप्त है (भारत में यह आँकड़ा 30 प्रतिशत से कम है)। बांग्लादेश में इस रोज़गार का एक उल्लेखनीय भाग कपड़े के कारख़ानों में देखा जा सकता है, जो अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारों में सिले हुए कपड़ों का निर्यात करते हैं। यह कामगार कुछ वर्षों की स्कूली शिक्षा पाने के बाद आते हैं और कभी-कभी तो स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद भी काम पर लगते हैं, लेकिन उस स्कूली शिक्षा में कौशल का घटक भारत से बहुत अलग नहीं है।

स्कूलिंग और स्किलिंग

इसलिए शायद अनुभवों के आधार पर यह विचार सही नहीं बैठता है कि स्कूली शिक्षा में कौशल के समावेश की कमी के कारण भारत में युवा वर्ग नौकरी पाने में असफल है। भारत में बेरोज़गारी के अन्य कारण हो सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले कई संगठन जो समाज में असमानता के बारे में चिन्तित हैं, वे स्कूलों में सभी बच्चों को सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए तर्क देते हैं। यदि स्कूलों में कौशल या कार्य के बारे में जानकारी या अनुभव प्रदान किया जाता है, तो वे तर्क देते हैं कि अपनी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बावजूद सभी बच्चों को ऐसी जानकारी या अनुभव दिया जाना चाहिए। वे छोटे, पारम्परिक व्यापारों में लगे परिवारों से बच्चों को लाने के अन्य साधनों की वकालत करते हैं, हालाँकि उनके द्वारा स्कूली शिक्षा का उपयोग पूरी तरह से नहीं कर पाने के बारे में भी उनकी चिन्ता बनी रहती है। अनिवार्य स्कूली शिक्षा या माता-पिता को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए विभिन्न प्रकार की मदद देना इस लक्ष्य को पाने की रणनीतियाँ हो सकती हैं।

जीवन को पाठों के साथ जोड़ने का महत्त्व

अगर हम चाहते हैं कि हर बच्चा सीखे, तो कक्षा में जो कुछ होता है, उसे बच्चों के लिए दिलचस्प बनाया जाना चाहिए। स्कूली शिक्षा को प्रत्येक बच्चे के लिए दिलचस्प बनाने के लिए अध्यापकों की शिक्षण-पद्धति और अन्य अभ्यासों में बदलाव करना होगा। वास्तविकता (बच्चों का जीवन) के साथ अमूर्तता (पाठ) को जोड़ना महत्त्वपूर्ण है, यह सभी बच्चों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण है, उनके लिए भी जो विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। वास्तविक जीवन के साथ सम्बन्ध न होना कॉलेज और विश्वविद्यालय की शिक्षा में भी एक मुद्दा है और इसके चलते अधिगम बहुत उपयोगी नहीं बन पाता, भले ही यह डिग्रियाँ कुछ विद्यार्थियों

को नौकरी दिलाने में सहायक होती हों।

तो फिर पारम्परिक कौशलों का क्या? औद्योगिक या आर्थिक विकास के कारण लोग पारम्परिक व्यवसायों को छोड़ देते हैं। क्या कृषि एक महत्त्वपूर्ण ज़रूरत नहीं है? क्या हम आधुनिकीकरण या विकास के चलते पारम्परिक कौशलों को गँवा रहे हैं? यह वाकई चिन्ता के विषय हैं।

यहाँ पर दो महत्त्वपूर्ण बिन्दु देखने को मिलते हैं। पहला, अगर कृषि या कारीगरी या पारम्परिक कौशल से जुड़े कुछ लोगों या विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक समूहों को सिर्फ़ अपने जीवन-निर्वाह के लिए इन व्यवसायों में बने रहना है तो कुछ मुद्दे सामने आ सकते हैं। यह एक वांछनीय सम्भावना नहीं है क्योंकि यह तभी काम करेगा जब कृषि श्रमिकों के बच्चे स्वयं अपनी इच्छा से कृषि श्रमिक बन जाएँ। दूसरा, कुछ व्यवसायों से मिलने वाले मुनाफ़ों में गिरावट आई है जैसे कि खेती और कारीगरी कौशल और सम्भव है कि सामाजिक-आर्थिक विकास के कारण आगे भी यह स्थिति बनी रहे तथा अगर इन व्यवसायों का अस्तित्व बनाए रखना है और उन्हें फलने-फूलने देना है तो इस मुद्दे को सम्बोधित करना आवश्यक है।

पारम्परिक कौशल मुख्यधारा की शिक्षा से लाभान्वित होते हैं

मैं इस सम्बन्ध में दो अनुभव बताना चाहता हूँ। अमेज़न के देशज समूहों की बस्तियों की यात्रा के दौरान मैं ऐसे लोगों से मिला जिन्होंने स्कूल या कॉलेज की शिक्षा प्राप्त की थी, लेकिन वे उन पारम्परिक, पारिवारिक आजीविका में लगे रहे जो भूमि, जंगल और नदी पर निर्भर थी। इन बस्तियों में जीवन सुरक्षित है क्योंकि भोजन पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। जैसे कि टैपिओका, नदी की मछलियाँ और फलों की कई किस्में यहाँ मिलती हैं और इसलिए देशज समूहों के यह शिक्षित लोग उद्योगों या शहरों में नौकरी नहीं करना चाहते हैं और न ही शहर की मलिन बस्तियों में रहना चाहते हैं। लेकिन उनके लिए शिक्षा कई विभिन्न कारणों से महत्त्वपूर्ण है : वे बाहरी लोगों की घुसपैठ का विरोध कर सकते हैं और क़ानूनी रूप से अपने क्षेत्रों की रक्षा कर सकते हैं, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारों में अपने पारम्परिक उत्पादों को बेच सकते हैं और दुनिया के विभिन्न हिस्सों के दूसरे लोगों के साथ जुड़ सकते हैं।

हाल ही में मैंने पंजाब में 'शिक्षित' किसानों के एक समूह से मुलाकात की। इसमें दिल्ली से लौटे हुए सॉफ्टवेयर इंजीनियर थे, स्कूल के पूर्व शिक्षक थे और अमरीका से लौटे हुए एक सज्जन शामिल थे। वे कीटनाशकों के उपयोग के बिना जैविक कृषि कर रहे हैं और उन्होंने बताया कि वे पंजाब की पारम्परिक खेती के तरीक़ों को पुनर्जीवित कर रहे हैं। औपचारिक शिक्षा ने उन्हें रसायनों का उपयोग किए बिना खेती के नए तरीक़े सीखने, विभिन्न ज़िलों में नेटवर्क विकसित करने और ऐसे नेटवर्क के माध्यम से अपने उत्पादों की बिक्री में मदद की है। वे अपने कार्य के महत्त्व के प्रति सचेत हैं और मेरे जैसे बाहरी लोगों को इस बारे में अच्छी तरह से समझाने में सक्षम हैं।

इन दोनों उदाहरणों में - यानी अमेज़न के देशज लोगों और पंजाब के जैविक किसानों में – हम यह देख सकते हैं कि यह लोग पारम्परिक कौशल या आजीविका का पुनरुद्धार कर रहे हैं और औपचारिक शिक्षा ने इन कौशलों की पहुँच को बढ़ाने, मुख्यधारा के समाज का सामना करने और दूसरों के साथ सार्थक अन्तःक्रिया करने में मदद की है।

सारांश

हालाँकि मैं उन लोगों की चिन्ताओं के प्रति सहानुभूति रखता हूँ जो यह मानते हैं कि सभी बच्चों को स्कूल में लाने और स्कूली शिक्षा को सफलता के साथ पूरी करने में कौशल-आधारित स्कूली शिक्षा का न होना एक गम्भीर बाधा है, किन्तु सामाजिक या आर्थिक गतिशीलता प्राप्त करने की व्यक्तिगत इच्छा या बढ़ती असमानता के बारे में समाज की चिन्ता इससे सम्बन्धित प्रयोगों को अप्रभावी बना सकती है।

इसके अलावा इस बात का भी अपना महत्त्व है कि प्रत्येक बच्चा कुछ निश्चित वर्षों के लिए सामान्य-उद्देश्य वाली शिक्षा प्राप्त करे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि भारत की स्कूली शिक्षा से सम्बन्धित गम्भीर समस्याओं को कम करके आँका जाए। स्कूल जाने वाली उम्र के आधे से अधिक बच्चे स्कूली शिक्षा पूरी नहीं करते हैं या वे स्कूल जाने पर भी बहुत ज़्यादा नहीं सीखते, तथा; शिक्षा पूरी होने के बाद भी कई बच्चे अच्छा रोज़गार पाने में असफल रहते हैं। चिन्ता की एक और बात यह है कि कई लड़कियाँ वैतनिक रोज़गार में नहीं हैं। इस स्थिति के लिए अन्य सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक कारण हो सकते हैं जिनके बारे में हमें सोचना चाहिए और उन्हें सम्बोधित करने का प्रयास करना चाहिए।



वी. शान्ताकुमार अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में प्रोफ़ेसर हैं। वे 1996-2011 में सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज़ (त्रिवेन्द्रम) के संकाय सदस्य थे। वर्तमान में उनकी रुचि, विकास और शिक्षा के अन्तर-सम्बन्धों और उन तरीक़ों के बारे में है जिनसे जनसंख्या समूहों के बीच की 'दूरी' को कम किया जा सके ताकि उनके बीच 'विकास का अन्तर' कम हो सके। उन्होंने क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दों पर सलाहकार के रूप में कई असाइनमेंट और अनुसन्धान परियोजनाओं पर काम किया है। उनसे santhakumar@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल